पाकदर्पणम् – भारतीय पाकशास्त्र का अद्भुत निदर्शन

डॉ. समय सिंह मीना
सहायक आचार्य, संस्कृत
राजकीय महाविद्यालय, छबड़ा, जिला–बारां (राज.)

संस्कृत साहित्य भारतीय समाज एवं संस्कृति के भव्य विचारों का रुचिर दर्पण है। प्राचीन भारतीय ज्ञान–विज्ञान, कला, ज्योतिष, चिकित्सा, धर्म–दर्शन, खान–पान, व्यवहार, आचार–संहिता इत्यादि सब कुछ संस्कृत साहित्य में उपनिबद्ध है, क्योंकि यहाँ प्रेय:शास्त्र तथा श्रेय:शास्त्र दोनों के अध्ययन–अध्यापन की ओर प्राचीनकाल से ही विद्वानों की प्रवृत्ति रही है। इनमें भारतीय पाककला व पाकशास्त्र विषयक रचनाएँ भी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। भारतीय पाककला पूर्णत: आयुर्वेदाश्रित है जो कि हमारे दिग्द्रष्टा पूर्वजों के सतत स्वाध्याय, अभ्यास, अनुभव एवं प्रयोगधर्मितामूलक ज्ञान–विज्ञान का निष्ठ्यूत है। इसी कारण भारतीय पाककला में स्वास्थ्य एवं रोगों का निदान, इन दोनों पक्षों का बखूबी ध्यान रखा गया है। वेद, उपनिषद्, पुराण, स्मृतिग्रन्थ, चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता आदि के अतिरिक्त अनेक अर्वाचीन रचनाएँ जैसे पंडित रघुनाथ विरचित 'भोजनकुतुहलम्', क्षमाश्रमण विलिखित 'क्षमाकुतुहलम्', अन्नाजी बल्लाल बापता की 'पाकचन्द्रिका', 'इन्दुराकारावैद्य:' तथा 'शिवतत्त्वरत्नाकर:' आदि महत्त्वपूर्ण हैं। इसी क्रम में आहारविज्ञान सम्बन्धी एक अतिमहत्त्वपूर्ण एवं अद्भुत ग्रन्थ है– 'निषधाधिपति महाराजा नल द्वारा विरचित 'पाकदर्पणम्'। 'पाक' से तात्पर्य है 'पाकक्रिया या पकाया गया भोजन' तथा 'दर्पणम्' का अर्थ है 'प्रतिबिम्ब'। इस प्रकार पुस्तक का शीर्षक ही हमें ग्रन्थ में सुगुम्फित्त पाककला तथा पाकपद्धतिविषयक बोध की जानकारी देता है। राजा नल द्वारा विरचित होने के कारण इसे 'नलपाक' भी कहते हैं। इसमें 11 प्रकरण एवं 760 श्लोक हैं, जिनमें राजाओं की पाकशालाओं में प्रयुक्त पाकक्रियाओं और पाकविधियों का विशद वर्णन किया गया है।

यह सर्वविदित है कि राजा नल दमयन्ती–स्वयंवर में आये हुए इन्द्र आदि चार लोकपालों को अपने दूतकर्म के द्वारा प्रसन्न कर उनसे आठ वरदान प्राप्त करते हैं, जिनमें अश्वविद्या तथा पाकनिर्माणसिद्धि भी आती है। राजा नल ने पाकविद्या का वरदान सूर्यपुत्र यम से प्राप्त किया। राजा नल ने अपनी उपस्थिति से किस काल को सुशोभित किया, यह अभी तक स्पष्ट नहीं है, परन्तु राजा नल ने पाकदर्पणम् में स्वयं स्पष्ट किया है कि अपने

राज्य को खो देने के बाद वह 'बाहुक' नाम से राजा ऋतुपर्ण के नगर में स्वयं को अश्वविद्या एवं पाकविद्या में प्रवीण घोषित करते हुए निवास करते हैं। साथ ही प्रमाणस्वरूप प्रत्येक प्रकरण के अन्त में उपसंहार के अन्तर्गत स्वयं की प्रशंसा करते हुए स्वयं को इसका लेखक घोषित किया है। यह ग्रन्थ हमारे प्राक्तन आहार-विचार, रहन-सहन आदि का ज्वलन्त प्रतीक है। इसके माध्यम से हम हमारी गौरवमयी प्राचीन खान-पान की परम्पराओं को वर्तमान पीढ़ी के समक्ष रख कर उसकी जीवन-शैली में सुधार कर सकते हैं।

'पाकदर्पणम्' मूल रूप में संस्कृत में विलिखित है। इसके मूल प्रकाशन को पंडित वामाचरण भट्टाचार्य द्वारा सम्पादित किया गया। इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद डॉ. इन्द्रदेव त्रिपाठी द्वारा किया गया जो काशी संस्कृत ग्रन्थमाला-1 के रूप में चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी से प्रकाशित हुआ तथा डॉ. मधुलिका द्वारा किया गया अंग्रेजी अनुवाद चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी से प्रकाशित हुआ। उसके बाद अन्य विद्वज्जनों ने भी अलग-अलग भाषाओं में इस ग्रन्थ की उपादेयता को देखते हुए सम्पादन एवं अनुवाद कार्य कर प्रकाशित करवाया है। इसी क्रम में पंडित हरिहरप्रसाद त्रिपाठी द्वारा सम्पादित एवं व्याख्यायित नलविरचित पाकदर्पण चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी से कृष्णदास संस्कृत सीरीज-193 के रूप में प्रकाशित हुआ। पं. हरिहरप्रसाद त्रिपाठी द्वारा सम्पादित हिन्दी अनुवाद रूप यह ग्रन्थ 11 प्रकरणों तथा 751 पद्यों में उपनिबद्ध है। परन्तु नीदरलैण्ड के मशहूर चिकित्सक एवं शोधकर्ता के अनुसार इस मूल ग्रन्थ में कुल 760 पद्य हैं। यहाँ ध्यातव्य हैं कि इसके सबसे पहले प्रकरण में ही कुल 499 पद्य हैं, जो कि इस सम्पूर्ण ग्रन्थ का एक तिहाई भाग है। सम्पूर्ण पद्य राजा ऋतुपर्ण और राजा नल (बाहुक) के मध्य हुए पाकविषयक संवादों के रूप में विलिखित है।

'ग्रन्थोपक्रम' नामक सबसे पहले प्रकरण में राजा नल द्वारा दमयन्तीस्वयंवर में अपने दौत्यकर्म से प्रसन्न इन्द्रादि लोकपालों से आठ वरदान प्राप्त करने तथा सभी लोगों के कल्याणार्थ यम से प्राप्त पाकविद्या को 'पाकदर्पणम्' नामक ग्रन्थ में उपनिबद्ध करने का प्रयोजन बतलाया है। भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य तथा दुग्धगत छः रसों पर आधारित भोजन संस्कार भेद से इन पाँच प्रकारों में भोज्य पदार्थों का विभाजन अनुभवसम्मत ही है। यहाँ राजा नल का यह कथन कि '' सभी व्यंजनों का संस्कार लवणादि रसद्रव्यों से होता है। इन सबके बिना केवल जल से भी पाक होता है तथा चित्रपाक तो उत्तम रस वाला होता है'' (1/5) स्वयं में रचना-वैशिट्य को प्रतिपादित करता है। एक कुशल रसोईये एवं परोसने वाले के लक्षण तथा आठ प्रकार के अन्नगतदोषों का उल्लेख निश्चित ही अद्भुत है। अन्न के विषय में वैदिक अवधारणानुसार राजा नल द्वारा अन्न को ब्रह्मस्वरूप तिरेसठ रससम्पन्न मानते हुए इसे सभी प्राणियों का प्राणस्वरूप बताया है। यहीं पर क्रमानुसार शाकाहारी और मांसाहारी

दोनों तरह के भोजनों के निर्माण की सुदीर्घ सूची अनुसार पाकक्रियाओं और विधियों का उल्लेख किया गया है। भोजन में कौनसी सामग्री किस मात्रा में तथा किस अनुपात में मिलायी जानी चाहिए। साथ ही कौनसा भोजन कितनी आँच पर पकाया जाना चाहिए, इसका सुस्पष्ट वर्णन किया गया है। एक ही भोजन सामग्री को अलग-अलग विधियों से पकाया जाना बहुत ही रोचक है। चावल, दाल, सूप, मठ्ठा, खल, मक्खन, केला, वृन्ताक (बैंगन), कटहल आदि सब्जियों, तरह-तरह के पाक बनाने की विधि, शाक आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है। यहाँ यह उल्लेखनीय हो जाता है कि जिन फलों व सब्जियों, पादपों के विभिन्न भागों से निर्मित खाद्य पदार्थों से वर्तमान पीढ़ी पूर्णत: अनभिज्ञ है, उन नाना-नाना प्रकार की स्वास्थ्यप्रद भोज्य-सामग्री को तैयार करने की विधियों का गुण-दोषों के साथ वर्णन करना निश्चित ही भारतीय आयुर्विज्ञान की पराकाष्ठा है।

'ऋतुधर्म निरूपण' नामक दूसरे प्रकारण के 42 पद्यों के अन्तर्गत राजा नल ऋतुओं के प्रकारों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि दो महीने की एक ऋतु होती है, यह उपयुक्त क्रम नहीं है। बल्कि लोकप्रमाण के अनुसार युक्ति एवं गुणभेद के द्वारा ऋतुभेद प्रतिदिन होता रहता है। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त पर्यन्त कालक्रमानुसार छ: भाग कर लेने चाहिए। दिन के प्रथम भाग में वसन्त ऋतु, द्वितीय भाग में ग्रीष्म ऋतु, तीसरे भाग में वर्षा ऋतु, चौथे भाग में शरद् ऋतु, पाँचवे भाग में हेमन्त ऋतु तथा छठवे भाग में शिशिर ऋतु की अवधारणा प्रस्तुत की गयी है। (2/17-21) यहाँ राजा नल का विशेष रूप से कहना है कि विद्वान् व्यक्ति के द्वारा प्रत्येक ऋतुओं के अनुसार देश, काल, वय (उम्र), अवस्था, धातु तथा दोषों के बलाबल का ठीक विचार करते हुए ही भोज्य पदार्थ ग्रहण करने चाहिए। यहाँ ऋतुक्रम के अनुसार प्रयुक्त मांस का वर्णन-आधिक्य तत्कालीन राजप्रसादों में मांसभक्षण के आधिक्य को दर्शाता है।

'भक्ष्य प्रकार' नामक तीसरे प्रकरण के 19 पद्यों में विशिष्ट भोज्य पदार्थ 'भक्ष्यराज' के निर्माण हेतु मात्रानुसार सामग्री, उसके निर्माण की विधि का वर्णन करते हुए इसे वात-पित्तनाशक, बलकारक, अग्निवर्धक, सुपाच्य तथा शरीर का विकास करने वाला बताया गया है। साथ ही मांस व अण्डों की सहायता से निर्मित अन्य प्रकार के भक्ष्य की विधि भी बतलायी गयी है। 'पायसप्रकारनिरूपणम्' नामक चतुर्थ प्रकारण के 33 पद्यों में लहसुन व मांस निर्मित पायस (खीर), गेहूँ निर्मित खीर, विभिन्न फलों व फूलों, शहद, घी आदि की सहायता से तरह-तरह के पेय पदार्थों के तैयार करने के तरीकों का गुण-दोष विवेचन बहुत ही लाभकारी है। 'पानकभेदनिरूपणम्' नामक पंचम प्रकरण के 25 पद्यों के अन्तर्गत नाना-नाना प्रकार के पानकों (पेय पदार्थों) का वर्णन किया गया है। भिन्न-भिन्न पेय पदार्थ हेतु स्वर्ण, ताम्र, पूगपट्ट (पत्ते से निर्मित पात्र) आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के पात्रों का उपयोग करने का कारण सहित वर्णन किया गया है, जो कि बहुत ही ज्ञानवर्धक है।

'विविधान्नयूषपाकनिर्माणप्रकरणम्' नामक छठवें प्रकरण के अन्तर्गत 27 पद्यों में अलग-अलग धान्यों से निर्मित यूषपाक की विधि तथा उसे विभिन्न फल-पुष्पों के रसों व सुगन्ध से सुवासित कर अलग-अलग रूप देना बताया गया है। इसे कल्पवृक्षसम थकावट दूर करने वाला, भली-भाँति सेवनीय, सराहनीय तथा सभी के मन को आह्लादित करने वाला बतलाया गया है। 'घृतान्नपाकप्रकरणम्' नामक सप्तम प्रकरण के 26 पद्यों में घी और भली-भाँति पकाये गये राजशालि भात से निर्मित तथा लहसुन, मेथी, जीरा, धनिया, कायफ्ल, केवड़ा, बिजौरा नींबू, कस्तूरी, कर्पूर, अदरक, हींग, इमली, सरसों, दही, मिर्च, सोंठ आदि के प्रयोग से अलग-अलग रूपों में उसको संस्कारित कर पूगपट्ट नलिकाओं में रख कर प्रयोग करना दर्शाया गया है। इस प्रकार निर्मित पाक को बलवृद्धिकारक, जठराग्नि-उत्तेजक तथा वात एवं कफ का निवारक कहा गया है।

'लेह्यप्रकरणम्' नामक आठवें प्रकरण के अन्तर्गत आठ पद्यों में आम आदि फलों से निर्मित लेह्य पदार्थ (चटनी/अवलेह) जो कि पित्तदोषशामक, पथ्य एवं वात-कफका नाशक होता है, के तैयार करने की विधि सरल भाषा में बतायी गयी है। साथ ही इसके नित्य प्रयोग से शरीर आन्तरिक दोष-समूहों से पूर्णत: मुक्त होकर स्वच्छ दर्पण की भाँति तेजोमय हो जाता है, ऐसा कहा गया है। 'शैत्यजलनिर्माणप्रकरणम्' नामक नवम प्रकरण में 49 पद्यों में जल को शीतल एवं सुवासित करने के विविध प्राक्तन ऐसे तरीकों व प्रक्रियाओं से परिचय करवाया गया है जो कि आर.ओ., फ्रिज आदि अत्याधुनिक तकनीकी उपकरणों से भी संभव नहीं है। यहाँ मिट्टी के घड़े, कर्पूर, कस्तूरी, कपड़े, विविध पुष्पों, बालू रेत, ताड़ के पत्ते, रीठा के बीजों के चूर्ण आदि की सहायता से कसैले व खारे पानी को भी पीने योग्य बनाने की विधि अचम्भित वाली है।

इस प्रकार संस्कारित शीतल जल पिपासा शांत करने के साथ ही किसी भी तरह का नुकसान न कर विभिन्न रोगों का विनाशक होता है। इसके अतिरिक्त नानाविध पुष्पों की सहायता से तन्त्ररूप अर्थात् इत्र, सेण्ट आदि बनाने के बारे में बताया गया है। यहाँ पुष्पों का संचयन कर रखने और वर्षभर उनके प्रयोग की सुविज्ञता बतलायी गयी है। 'संग्रही नावसीदति' अर्थात् संग्रही/संचयी प्राणी कभी क्लेशित नहीं होता, ऐसा कहकर सुखी जीवन का मार्ग बतलाया है। क्योंकि वर्तमान में हम प्रकृतिप्रदत्त पदार्थों के संचय एवं उनके लाभदायक औषधिमूलक भोज्य प्रयोग को भूल कर केवल रसायनों के आश्रित होकर अपने तथा भावी पीढ़ी का विनाश करने पर तुले हुए हैं।

'क्षीरादिपाकनिरूपणप्रकरणम्' नामक दशवे प्रकरण के 22 पद्यों में क्षीरपाक (दुग्धनिर्मित पदार्थ), रबड़ी, खीर आदि भोज्य पदार्थ बनाने की विधियों और घी, शहद, अनारादि पुष्पों से उन्हें संस्कारित एवं

सुवासित कर अलग-अलग स्वाद (फ्लेवर) देने की विधियों का वर्णन है। इस क्षीरपाक को देवदुर्लभ तथा समस्त रोगनाशक बतलाया गया है। 'दधिभेदनिरूपणम्' नामक अन्तिम ग्यारहवें प्रकरण के 9 पद्यों में प्राक्तन पद्धतियों से अच्छा, ताजा व गाढ़ा दही तैयार करने की विधियों का वर्णन है। इसके अलावा चमेली, केवड़ा आदि नानाविध पुष्पों, कर्पूर आदि के द्वारा उसे उत्तम गुणों से परिपूर्ण बनाना भी बताया गया है। इस प्रकार निर्मित दही अरुचिनाशक, पथ्य, पौष्टिक तथा क्षुधाग्नि को बढ़ाने वाला कहा गया है।

इस प्रकार राजा नल द्वारा भोज्य पदार्थों के निर्माण की परम्परागत एवं विज्ञानसम्मत विशुद्ध भारतीय विधियों का सरल, संक्षेप एवं रोचक शैली में वर्णन किया है। यहाँ ध्यातव्य है कि राजा नल द्वारा अपने ग्रन्थ में चावल से निर्मित विविध भोज्य पदार्थों का अधिक वर्णन उन्हें चावलबहुलीय प्रदेशवासी एवं मांस भक्षण की अधिकता वाले राजप्रासाद का निवासीय द्योतित करता है। यहाँ पंड़ित हरिहरप्रसाद त्रिपाठी ने बहुत ही श्रमसाध्य प्रयत्न किया है। सुधीपाठकों के हाथों से प्रसारित एवं अग्रेषित होता हुआ यह ग्रन्थ जब हमारी गृहणियों के हाथों में पहुँच कर हमारे खान-पान, जीवनशैली का हिस्सा बनेगी, तब ही इसकी सार्थकता बन पायेगी। ग्रन्थ के सम्पादन में यद्यपि अथक परिश्रम किया है, फिर भी कुछ स्थलों पर पदविशेष जैसे पूगपट्ट, कायफल आदि का अक्षरश: अनुवाद करने की बजाय उनका अर्थ स्पष्ट करना, उनको परिभाषित करना और भी अपेक्षित हो जाता है।

यहाँ पद्यों के अक्षरश: अनुवाद की अपेक्षा उनकी तात्पर्यगत व्याख्या और भी श्रम की अपेक्षा रखती है। क्योंकि राजा नल द्वारा अपनी बात को संक्षेप में कहने के प्रयत्न के कारण कुछ विधियाँ तथा उनमें प्रयुक्त सामग्री घी, शहद आदि की मात्रा व अनुपात का उल्लेख नहीं होने के कारण संशय उत्पन्न होता है। अन्नगत दोषों के वर्णन में असृतान्न, क्वथितान्न आदि के वर्णनीय कुछ पद्य अस्पष्ट से प्रतीत होते हैं। इनको स्पष्ट किया जाता तो यह पुस्तक और भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। यदि हम नलविरचित पाकदर्पणम् के ही सम्पादक पं. इन्द्रदेव त्रिपाठी द्वारा सम्पादित एवं चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी द्वारा प्रकाशित पुस्तक का अवलोकन करें तो पायेंगे कि इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। दोनों में अक्षरश: साम्य है। फिर भी यदि येन केन प्रकारेण यह पुस्तक हमारी आहारचर्या में सुधार ला पाती है, तो निश्चित ही हमारे लिए तथा भावी पीढ़ी के लिए बहुत बड़ा उपकार होगा। क्योंकि कहा गया है- 'जैसा होगा अन्न, वैसा होगा मन।' अत: आहारशुचिता ही हमारे जीवन का सूत्र है।